Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222

ISSN-2250-2335

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

देवेश ठाकुर

जीवन के ९०वें वसंत में प्रवेश करने पर समीचीन परिवार की ओर से अनंत शुभकामनाएँ

● वर्ष-15 ● अंक 31 ● अप्रैल - जून 2022 ● पूर्णांक 69 मूल्य 100 रुपए

● प्रधान संपादक - देवेश ठाकुर ● संपादक - डॉ. सतीश पांडेय

ISSN-2250-2335 Reg. No. MAHHIN/2008/26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की त्रैमासिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

प्रबंध संपादिका :
डॉ. रोहिणी शिवबालन
प्रधान संपादक-प्रकाशक :
डॉ. देवेश ठाकुर
संपादक :
डॉ. सतीश पांडेय
संयुक्त संपादक :
डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट
डिजिटल संपादक :
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

संपादकीय-संपर्क :
बी-23, हिमालय सोसाइटी,
असल्फा,
घाटकोपर (प.), मुंबई-400 084.
टेलिफोन : 25161446
Email: sameecheen@gmail.com
website-www.http//:
sameecheen.com

विशेष :
'समीचीन' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबद्ध रचनाकारों के हैं। संपादक-प्रकाशक की उनसे सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय-क्षेत्र मात्र मुंबई होगा। सभी पदाधिकारी पूर्णरूप से अवैतनिक।

परीक्षक विद्वत मंडल : (Peer Review Team)
1) प्रोफेसर ताकेशी फुजिई
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
टोक्यो यूनिवर्सिटी फॉर फॉरेन स्टडीज, टोक्यो
2) प्रो. (डॉ.) देवेन्द्र चौबे
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
3) प्रो. (डॉ.) वशिष्ठ अनूप
हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ. प्र.)
4) डॉ. नरेन्द्र मिश्र
प्रो. हिंदी, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू मैदानगढ़ी,
दिल्ली110068
5) प्रो. (डॉ.) करुणाशंकर उपाध्याय
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई
6) डॉ. अनिल सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई
विश्वविद्यालय, मुंबई
7) प्रो. (डॉ.) सदानंद भोसले
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ, पुणे
8) प्रो. (डॉ.) शरेशचंद्र चुलकीमठ
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़
9) डॉ. अरुणा दुबलिश
पूर्व प्राचार्य, कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक : देवेश ठाकुर ने प्रिंटोग्राफी सिस्टम (इंडिया) प्रा. लि., 13/डी, कुर्ला इंडस्ट्रियल एस्टेट, नारी सेवा सदन रोड, नारायण नगर, घाटकोपर (प.) मुंबई-400 086 में छपवाकर बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा, घाटकोपर (प.), मुंबई-400084 से प्रकाशित किया।

• वर्ष-15 • अंक 31 • अप्रैल-जून-2022 • पूर्णांक 69 • मूल्य 100 रुपए
सहयोग : एक प्रति रु. 100/-, वार्षिक रु. 400/-, पंच वार्षिक रु. 2000/-

सीधे समीचीन के खाते में भेजने के लिए : खातेधारक का नाम : **समीचीन** / sameecheen
A/C No. 60330431138, Bank of Maharashtra,
Dr. Ambedkar Road, Dadar, Mumbai. IFSC : MAHB0000045

अनुक्रमणिका

अपने तईं

1. **जंगल के जुगनू : नारी-संकल्प एवं संघर्ष का आख्यान**
   - डॉ. प्रविणचंद्र बिष्ट 05-10
2. **गोडसे@गांधी.कॉम : संवादहीनता बनाम संवाद**
   - डॉ. सदानंद भोसले, प्रा. प्रदीप रंगराव जटाल 11-15
3. **आदिवासी अस्मिता का पक्षधर कवि-अनुज लुगुन**
   - डॉ. आरिफ शौकत महात 16-21
4. **उनकी खामोशी अब भी बहुत कुछ कह रही है..**
   -डॉ. महेश दवगे 22-27
5. **अज्ञेय का सृजनात्मक चिन्तन**-डॉ. राजन तनवर 28-32
6. **'बिखरे पन्ने' का आत्मनिरपेक्ष आत्म**- डॉ. मीना सुतवणी 33-38
7. **अब्बास किरोस्तामी की सिनेमाई प्रयोगधर्मिता का समीक्षात्मक अध्ययन**- डॉ. ईशान त्रिपाठी 39-44
8. **अमूर्त्त में मूर्त्त की सत्यता: भारत दुर्दशा**- डॉ. पूनम शर्मा 45-50
9. **गोरखनाथ के काव्य की भाषिक संरचना**-डॉ. दिनेश साहू 51-57
10. **मीरा : नारी का संघर्ष**- डॉ. सीमा रानी 58-63
11. **गुप्त जी के काव्य में व्याप्त पर्यावरण संरक्षण**-डॉ. मिथिलेश शर्मा 64-70
12. **रामानंद रामरस माते, कहहि कबीर हम कहि कहि थाके...**
    -डॉ. अशोक कुमार मीना 71-75
13. **रसानुभूति और महेश दिवाकर का काव्य**-डॉ. सुनील कुमार 76-81
14. **भविष्य की उम्मीद को टटोलती समकालीन कविता**
    -डॉ. शशि शर्मा 82-87
15. **डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' की 'बस एक ही इच्छा' में चित्रित स्त्री संवेदना**-डॉ. पठान रहीम खान 88-93
16. **'नत्थी टूट गयी थी' कहानी में चित्रित वेश्या जीवन**
    -डॉ.जाकिर हुसैन गुलगुंदी 94-98
17. **इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में ग्लोबल संस्कृति**
    -डॉ. ललित श्रीमाली 99-103
18. **बद्री सिंह भाटिया के कहानी संग्रह 'कवच' में राजनीतिक सन्दर्भ**-डॉ. अंजू बाला 104-108
19. **'झूमुर' गीतों में प्रेम**-प्रियंका दास 109-114
20. **आजादी के बाद मानवीय संवेदना का बिखरता मूल्य एवं स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास**-रविकान्त राय 115-119

आदिवासी अस्मिता का पक्षधर कवि-अनुज लुगुन

डॉ. आरिफ शौकत महात

वैश्वीकरण ने समूचे विश्व को बदल दिया है। दुनिया ने विश्वग्राम की जो संकल्पना देखी वह साकार हो गई। भूमंडलीकरण के चलते बदलाव की धारा पूरे विश्व भर में प्रवाहित हुई, जिसने विकास के नाम पर विश्वभर में पैर फैलाए। सन् 1991 के बाद विकास की यह धारा भारत तक पहुँची। विकास के नाम पर उदारीकरण एवं मुक्त व्यापार की चपेट में भारत के मूल निवासी या कहें आदिवासी आ गए। आदिवासियों ने आदिम काल से जंगल को अपना घर समझ उसे सहेज कर रखा था। औद्योगिक विकास के नाम पर अहिस्ता-अहिस्ता आदिवासियों के दोहन की कहानी शुरू हो गई। औद्योगिक विकास से संबंधित सारे संसाधन इन्हीं आदिवासियों के जल, जमीन, जंगल में मौजूद थे जिसके चलते आदिवासियों की जमीन को अधिग्रहित कर उन्हें हासिल करने का सिलसिला शुरू हो गया। आदिवासियों की जल, जमीन, जंगल को अधिग्रहित करना वास्तव में उनके मूल अधिकारों के हनन तक पहुँचा जिसके चलते संघर्ष की चिंगारी ने जन्म लिया। अपनी ही मस्ती में जीने वाले इन आदिम जनजातियों के जीवन में नवीन समस्याओं ने दस्तक दी। इस संघर्ष ने ही उनकी अस्मिता को चकनाचूर करने के साथ उनकी आदिवासियत को खतरे में डाला।

'आदिवासियों की अस्मिता का प्रश्न जहाँ उनके नाम की परिभाषा से गहरा संबंध रखता है, वहीं वह उनकी सामाजिक संरचना और जीवन यापन के साधन जल, जंगल, जमीन से जुड़ा है। उसका उद्‌गम उसकी पहचान को पुष्ट करता है, तो उसकी विरासत भाषा, शिक्षा, संस्कृति और जीवनशैली पहचान को जिंदा रखती है। इनकी रक्षा किए बिना उसकी अस्मिता की रक्षा नहीं हो सकती है।'[1] वास्तव में देखा जाए तो आदिवासियों की अस्मिता उनके जल, जंगल, जमीन से जुड़ी हुई है। उनके उन अधिकारों से जुड़ी हुई है जो प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित हैं। विकास के नाम पर सबसे ज्यादा हल्ला उनकी इसी अस्मिता पर हुआ है। विकास के नाम पर सरकारों द्वारा उनके जमीनों का अधिग्रहण शुरू हुआ। फिर उस जंगल की चीजों पर कानूनी रोक लगा दी गई, जिससे वह अपनी जीविका चलाते थे। जिस जल, जंगल और जमीन को वह अपना सब कुछ मानते थे, जिससे उनकी परंपरागत अस्मिता जुड़ी हुई है, जिससे उनकी भाषा, संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज जुड़े हुए हैं उन्हीं से उन्हें वंचित करने की कोशिश निरंतर जारी रही। इसी के चलते आदिवासी अस्मिता के नए प्रश्न उभरकर सामने आए जिसे हम अनुज लुगुन की कविता में देख सकते हैं।

अनुज लुगुन मुण्डारी भाषा के चर्चित युवा आदिवासी कवि हैं। उनकी कविताओं में आदिवासी जन समुदाय की पीड़ा दृष्टिगोचर होती है। आपका जन्म 10 जनवरी, 1986

को झारखण्ड के सिमडेगा जलडेगा पहान टोली में एक मुंडा परिवार हुआ। आपने अपना शोध कार्य 'मुंडारी आदिवासी गीतों में आदिम आकांक्षाएँ और जीवन-राग' बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से पूरा किया है। आपके बारे में रमणिका गुप्ता लिखती हैं- 'उनकी कविताओं में केवल झारखंड ही नहीं, पूरे देश का आदिवासी इतिहास झाँकता है- शौर्य बोलता है- और संग-संग चलता है चिंतन... दर्शन। अनुज लुगुन, इतिहास, संस्कृति, उत्साह, उम्मीद, संकल्प, हक और हौसले के कवि हैं। खूबसूरती की उनकी अपनी ही परिभाषा है, व्याख्या है, जो प्रचलित व पारम्परिक व्याख्या से भिन्न है- खतरनाक होने की हद तक सत्य और तथ्य के नजदीक है।'[2] अतः कह सकते हैं अनुज लुगुन वर्तमान दौर के आदिवासी अस्मिता एवं संघर्ष की बात बेबाकी से रखने वाले एक संवेदनशील एवं सशक्त कवि हैं।

90 के दशक से भारत में विकास के नाम पर और आदिवासियों को मुख्यधारा में सम्मिलित करने के इरादे से जो विकास की भूमिका तैयार की गई वह आदिवासियों को उनके जल, जंगल, जमीन से दूर ले जाने वाली साबित हुई। विकास का यह अनचाहा प्रवाह आदिवासियों के जीवन को विस्थापन, पलायन, भुखमरी, बेरोजगारी आदि नई समस्याओं से भर दिया। इन्हीं समस्याओं से दो-दो हाथ करना आदिवासियों को संघर्ष के रास्ते पर ले आया। नई पीढ़ी के आदिवासियों ने शिक्षा ग्रहण कर अपनी जनजातियों की समस्याओं की तरफ सारी दुनिया का ध्यान खींचा। अपने समाज के सामाजिक एवं परंपरागत सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए आवाज उठाना शुरू किया जिसके लिए उन्होंने अपने संगठन भी बनाए। उनका यह प्रयास राजनीतिक, साहित्यिक मंच से होते हुए अग्रेषित हुआ। आदिवासियों ने अपने इतिहास की जड़ों को नए सिरे से खोजने का प्रयास किया और अपनी समस्याओं का, अपने होने के भाव का, अपनी अस्मिता को बचाए रखने की जद्दोजहद का आगाज साहित्य के माध्यम से शुरू किया।

आदिवासी अस्मिता पर निरंतर चोट करती इस व्यवस्था के खिलाफ अनुज लुगुन अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं। उनका मानना है कि इस व्यवस्था के चलते विकास के नाम पर चल रही अंधी दौड़ में सरकार हमारे ही जल, जंगल, जमीन से हमें बेदखल कर रही है। वह हमसे यहाँ के निवासी होने का सबूत माँगते हैं। अपनी 'ससान दिरी' कविता में कवि इसका जवाब देते हुए कहते हैं-

'इन मृत पत्थरों पर जीवित है / हमारी सैकड़ों पुश्तों की विरासत /
लेकिन सरकारी पट्टों पर / इनका कुछ पता नहीं है /
ये हमारे घर हैं और इस तरह / हम बेघर हैं सरकारी पट्टों पर'[3]

आदिवासियों का यह संघर्ष सिर्फ उनकी अस्मिता एवं अस्तित्व टिकाए रखने के लिए नहीं है बल्कि इसके साथ पर्यावरण (जल-जंगल-जमीन) को बनाए रखने की उनकी जद्दो-जहद भी है। अपने संघर्ष की बात करते हुए कवि इस बात की ओर भी इशारा करते हैं-

'हम तैयार होते गए / नए मोर्चों पर लड़ाई के लिए /
सरकारी चेहरे की तरह पत्थर नहीं है / इनमें जंगल के लिए लड़ते हुए /
एक पेड़ की कहानी है / जो धराशायी हो गया /
नफरत की कुल्हाड़ी से / एक डाल की कहानी है /
जो पंछियों को पनाह देते-देते टूट गई / एक फूल की कहानी है /
जो बसन्त के आने से पहले झुलस गया'[4]

इस संघर्ष की बात करते हुए कवि कहते हैं कि यही ससान दिरी के सैकड़ों पत्थर (जो इनकी सांस्कृतिक विरासत वाले पत्थर हैं। जो इन्होंने उनके पुरखों की कब्र पर गाड़े हैं) इन्हें न्यायपूर्ण हस्तक्षेप करने के लिए हमेशा अमादा करते हैं। इनका यह न्यायपूर्ण हस्तक्षेप धरती को बचाने की प्रामाणिक लड़ाई है। यहाँ न्यायपूर्ण हस्तक्षेप बड़ा मायने रखता है।

आदिवासी अस्मिता असल में नक्सली विद्रोह एवं प्रशासकीय अत्याचार के बीच की धारा है। वास्तविक रूप में आदिवासी न तो लाचार बनकर जीना चाहते हैं और ना ही विरोध को हिंसा तक ले जाकर नक्सली। इन दोनों से परे जो आदिवासियों की मूल प्रवृत्ति है उसे वह बचाना चाहते हैं। अपने जल, जंगल, जमीन एवं जीवन पर अपना अधिकार एवं उसकी रक्षा के लिए प्रतिबद्धता यही आदिवासी अस्मिता का मूल स्वर है।

'मैं गीत गाना चाहता हूँ' कविता में कवि इसी की ओर इशारा करते हैं। उनका विद्रोह एवं संघर्ष उनके अस्तित्व को टिकाए रखने का माध्यम भर है। जिस बंजर जमीन को अपने खून से सींचा, उस फसल पर जब कोई और अपना अधिकार जताने आ जाता है तो उसे समझाते हैं। आदिवासियों के समझाने के तरीके को भी कवि यहाँ पर व्यक्त करते हैं-

'हमें गुरिल्ले और छापामार तरीके खूब आते हैं / लेकिन हमने पहले गीत गाए /
माँदर और नगाड़े बजाते हुए उन्हें बताया कि देखो /
फसल की जड़ें हमारी रगों को पहचानती हैं / फिर हमने सिंगबोंगा से कहा कि /
वह उनकी मति शुद्ध कर दे / उन्हें बताए कि फसलें खून से सिंचित हैं'[5]

इनका संघर्ष सीधे हथियार नहीं उठाता बल्कि इनका संघर्ष अपने अस्तित्व को टिकाए रखने का न्यायपूर्ण हस्तक्षेप करता है। अपने अधिकार के लिए आदिवासी सभी न्यायोचित रास्तों से होकर गुजरते हैं। सबसे बड़ी अदालत पहुँचने से पहले इनकी फसलें एवं इनके अधिकार रौंदे जाते हैं। अब यह घायल आदिवासी या कवि की भाषा में कहें तो शिकारी चट्टान के टीले पर बैठकर रौंदी जा चुकी फसलों को देख रहा है। शहीद हुए साथियों को, भूखे बच्चे और औरतों को देख रहा है। इसे अफसोस नहीं है बल्कि उसकी चाहत यही है कि वह अपनी फसल का सम्मान लौटाना चाहता है। अपनी आदिवासी अस्मिता बनाए रखना चाहता है। अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रहना चाहता है। इसलिए वह कहता है-

'मैं एक बूढ़ा शिकारी / घायल और आहत /
लेकिन हौसला मेरी मुट्ठियों में है और / उम्मीद हर हमले में /
मैं एक आखिरी गीत अपनी धरती के लिए गाना चाहता हूँ!'[6]

इनका यह आक्रोश इस व्यवस्था को लेकर है जो हिमायती होने का दावा तो करता है लेकिन कार्यवाही कुछ नहीं करता-

'हम दुखी हैं कि हमारी पत्नी और बच्चे फर्जी मुठभेड़ में मारे गए हैं'

मारे जाने का दुःख तो है ही लेकिन दुःख इस बात का भी है कि इस खबर को पड़ोस वाला भी नहीं जानता। उनकी इस खबर को उसकी वास्तविकता के साथ पहुँचने ही नहीं दिया जा रहा। सँविधान के तहत न्याय के रास्ते पर ये चल तो रहे हैं लेकिन यह रास्ता है कि कभी खत्म होने का नाम ही नहीं लेता। इसे स्पष्ट करते हुए कवि कहता है-

'न्यायाधीशों के रास्ते थकाऊ, घुमावदार और अंतहीन-
कई पीढ़ियों से जारी है उनके यहाँ चक्कर काटने का हमारा सिलसिला'[7]

कवि यहाँ आदिवासियों की समस्या के प्रति उदासीन प्रशासकीय व्यवस्था, मीडिया एवं न्याय व्यवस्था पर भी करारा प्रहार करता है। विकास की अंधी दौड़ ने दुनिया को क्या दिया पता नहीं लेकिन प्रकृति से बहुत कुछ लिया। यह प्रकृति से लेना या इसका होता दोहन इतना विनाशकारी एवं बर्बर है जिसकी आँच में सबसे पहले मूलनिवासी, जंगल निवासी आदिवासी झुलसे और देर सबेर सारी दुनिया झुलसेगी।

विकास के नाम पर प्रकृति एवं आदिवासियों का होता शोषण आदिवासी कविताओं में प्रमुख रूप में देखने को मिलता है। जो आदिवासी जल, जंगल, जमीन को अपना सब कुछ मानते थे उन्हें वहाँ से बेदखल कर दिया गया। सरकारी कागज में उनका कहीं नाम दर्ज नहीं। जिस जंगल से वे अपनी जीविका चलाते उसकी हर चीज पर पाबंदी लगाई गई। परिणाम स्वरूप कुछ संघर्षरत बन बागी कहलाए गए कुछ विस्थापित हो गए। विस्थापन की समस्या को लेकर रमणिका गुप्ता लिखती हैं 'सरकार ने विकास के नाम पर बड़े-बड़े बाँध बनाए जिससे लाखों लोग विस्थापित हुए। हमारे देश की विकास नीति का लक्ष्य होना चाहिए था विकास में सबको समान अधिकार की प्राप्ति। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। विकास तो हुआ, पर कुछ चुनिंदा लोगों का असंख्य लोगों की कीमत पर, खासकर आदिवासियों की कीमत पर। राष्ट्रहित के नाम पर आदिवासी लोगों की जमीन अधिगृहित कर उन्हें विस्थापित ही नहीं किया गया, बल्कि उनके संदर्भ में सँविधान में प्राप्त मूल अधिकारों का भी उल्लंघन किया गया। इन विकास परियोजनाओं से इन आदिवासी प्रदेशों अथवा क्षेत्रों का आर्थिक संतुलन भी बिगड़ गया।'[8] आदिवासियों के विस्थापन की समस्या रोज-ब-रोज गहराती जा रही है। इसी संदर्भ में अनुज लुगुन अपनी कविता 'शहर के दोस्त के नाम पत्र' में अपनी इस पीड़ा को दर्शाते हुए कहते हैं कि

'यहाँ से सबका रुख शहर की ओर कर दिया गया है /
कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा / उससे पहले नदी गयी /

अब खबर फैल रही है कि / मेरा गाँव भी यहाँ से जाने वाला है'[9]

आदिवासियों का विस्थापन हो रहा है लेकिन जंगल में लोहे के फूल खिल रहे हैं। विकास की आड़ में बाजार सजे हैं लेकिन सवाल यह है कि यह बाजार किसके हैं और खुले किसके लिए हैं। इस ओर इशारा करते हुए रमणिका गुप्ता कहती हैं- 'पूँजीपतियों के विकास व वन दमन के लिए आदिवासियों के विशाल जनसमूह को निस्सहाय बना दिया। उन्हें इस हालत में रखने की साजिश रची गई ताकि वे पूँजीपतियों के लिए सस्ते मजदूर बनकर उनके हित-साधन की दमनकारी मशीन का एक पुर्जा बन जाएँ।'[10]

कवि का दुःख अपनों के प्रति है जो विस्थापित हो रहे हैं। प्रकृति की गोद से निकलकर कंक्रीट के जंगलों में भटकने के लिए जहाँ पर उनका कोई नहीं। और यह वह बखूबी जानता है कि यह कंक्रीट के जंगल उनकी सहजता एवं सरलता के साथ उन्हें जीने नहीं देंगे जैसा कि प्राकृतिक जंगल देते हैं। कंक्रीट के जंगल उनकी आदिवासियत को, मासूमियत को बड़ी ही शान से कुचलेंगें। औद्योगीकरण के चलते रेलवे, स्लीपर, कागज लोहा और अन्य तरह के उद्योगों के लिए कच्चे माल एवं खनिज संपदा के लिए आज जंगलों और पहाड़ों को देखा जाने लगा है। जिसके चलते विकास का नया खेल शुरू होता है। जिसमें शुरुआती मुद्दों में आदिवासियों को मुख्यधारा में लाया जाना प्रमुख रहता है। फिर आदिवासी एवं उनकी आदिवासियत को बनाए रखने एवं बचाए रखने का खेल उन्हीं के जमीन से बेदखल कर उन्हें विस्थापित होने के लिए मजबूर करने की हद तक बढ़ जाता है। इसी समस्या की ओर इशारा करते हुए कवि अपनी कविता अघोषित उलगुलान में आदिवासियों के आक्रोश, संघर्ष एवं पीड़ा को वाणी देते हैं। इस तरह अपने ही जंगल में शिकार करने वाले खुद शिकारी बनते जा रहे हैं, इसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कविता में देखने मिलता है। आदिवासियों के संघर्ष एवं विस्थापन की दशा को व्यक्त करते हुए कवि कहता है-

'लड़ रहे हैं आदिवासी / अघोषित उलगुलान में /
कट रहे हैं वृक्ष / माफिया की कुल्हाड़ी से /
और बढ़ रहे हैं कंक्रीट के जंगल / दान्डू जाये, तो कहाँ जाये? /
कटते जंगल में / या- / बढ़ते जंगल में ... ?'[11]

व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का स्वर कवि ने आदिवासी औरतों के द्वारा भी उद्घाटित किया है। अपनी 'उलगुलान की औरतें' कविता में कवि आदिवासी औरतों के इसी बदलते स्वरूप को चित्रित करते हैं। अब आदिवासी औरतें बालों में श्रृंगार का फूल खोंसने के बजाय साहस का फूल खोंसती है। कवि कहते हैं-

'पगडंडियों से गलियों से बाहर / आँगन में गोबर पाथती माँ /
सदियों बाद स्कूल की चौखट पर पहुँची बहन / लोकल ट्रेन से कूदती हुई /
दफ्तर पहुँची पत्नी और भोर अँधेरे / दौड़-दौड़ कर खेतों की ओर /
चौराहे की ओर आवाज उठाती / सैकड़ों अपरिभाषित रिश्तों वाली औरतें /

खतरनाक साबित हो रही हैं'[12]

आदिवासी औरतों का यह बदलता रूप चिंता का विषय है। वह खतरनाक हो रही है धरती के दुश्मनों के लिए लेकिन धरती से प्रेम करने वालों के लिए वो उतनी ही खूबसूरत है, ऐसा कहने से भी कवि नहीं चूकते।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अनुज लुगुन वर्तमान दौर के आदिवासी समुदाय की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करने वाले सशक्त कवि है। इनकी कविताओं में आदिवासियों का इतिहास, संस्कृति, उत्साह, उम्मीद सब कुछ छलकता है। साथ ही विकास के नाम पर बदलते आदिवासी समुदाय के परिवेश को एवं उनकी पीड़ा को यथार्थ रूप में दर्शाने का काम वह बखूबी करते हैं। उनकी कविता संघर्ष का रास्ता अख़्तियार करती है लेकिन उनका यह संघर्ष विनाश के लिए नहीं बल्कि आदिवासियों की अस्मिता एवं अस्तित्व बनाए रखने का न्यायोचित हस्तक्षेप भर है।

संदर्भ :

1. गुप्ता रमणिका, आदिवासी अस्मिता के प्रश्न (हाशिये का वृत्तांत, संपा. दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे) आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2011, पृ. 351
2. गुप्ता रमणिका, कलम को तीर होने दो, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2015 पृ. 9
3. वही, पृ. 58-59
4. वही, पृ. 61
5. वही, पृ. 63
6. वही, पृ. 74
7. वही, पृ. 74
8. गुप्ता रमणिका, आदिवासी अस्मिता के प्रश्न (हाशिये का वृत्तांत, संपा. दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे) आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2011, पृ. 357-358
9. वही, पृ. 78
10. गुप्ता रमणिका, आदिवासी अस्मिता के प्रश्न (हाशिये का वृत्तांत, संपा. दीपक कुमार, देवेंद्र चौबे) आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2011, पृ. 357
11. गुप्ता रमणिका, कलम को तीर होने दो, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2015, पृ. 66
12. वही, पृ. 56

सहायक प्राध्यपक एवं हिंदी विभाग प्रमुख,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर (स्वायत्त)